संस्करण | १९८५
●
मूल्य | रु० २०.००
●
मुद्रक | धारा प्रेस
इलाहाबाद
●

प्रकाशक | अनादि प्रकाशन
६०७ कटरा
इलाहाबाद

संस्करण	१९८५
●	
मूल्य	रु० २०.००
●	
मुद्रक	धारा प्रेस इलाहाबाद
●	
प्रकाशक	अनादि प्रकाशन ६०७ कटरा इलाहाबाद

मदन मोहन मालवीय

विनम्र, सुचिता, राष्ट्र-प्रेम तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट निष्ठा के जिस महान् आदर्श के प्रति महामना मालवीय जी का जीवन समर्पित था उस आदर्श को हमे जीवन में आत्मसात् करने का प्रयत्न करना चाहिये।

—डा० राधाकृष्णनन्

पं० मदन मोहन मालवीय हमारे महान् राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के काल में राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक बड़ी हस्ती थी। हममें से जो उनके सम्पर्क में आये उस महान व्यक्तित्व से सशक्त प्रभाव ग्रहण करते थे।

—पं० जवाहर लाल नेहरू

दो शब्द

महामना मालवीय जी पर बालोपयोगी पुस्तक लिखने का विचार बहुत दिनों से मेरे मन में था। प्रायः मैं सोचा करता था कि पूज्य मालवीय जी पर एक ऐसी संक्षिप्त एवं सरल पुस्तक होनी चाहिये जिसे बालक एवं जन साधारण पढ़ सकें तथा उससे कुछ लाभ उठा सकें। अखिल भारतीय मालवीय जन्म-शती समारोह समिति के मन्त्री होने के कारण सौभाग्य से मुझे महामना से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं एवं महापुरुषों से परिचित होने का अवसर मिला, जिनसे मेरे विचारों को बहुत प्रेरणा मिली। फलस्वरूप शताब्दी समारोह से अवकाश पाते ही मैंने इस ओर ध्यान दिया और आज वह विचार मूर्तमान हो सका। आशा है, यह छोटा-सा प्रयास जन-साधारण के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में मुझे अपने अनेक मित्रों से सहायता मिली है जिनका मैं आभारी हूँ। यह पुस्तक इतनी शीघ्र प्रकाशित न हो पाती यदि मेरे अनुज, नारायण व्यास इस कार्य में अथक परिश्रम न करते।

अन्त में मेरी यही कामना है कि महामना जी के उच्च आदर्शों को यदि अधिक से अधिक लोग अपनाने का प्रयत्न करें तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

सर्वेण्ट ऑफ पीपुल्स सोसाइटी,
लाजपत भवन, कल्याणी देवी,
इलाहाबाद।

—सुनीत व्यास

पं० जवाहर लाल नेहरू

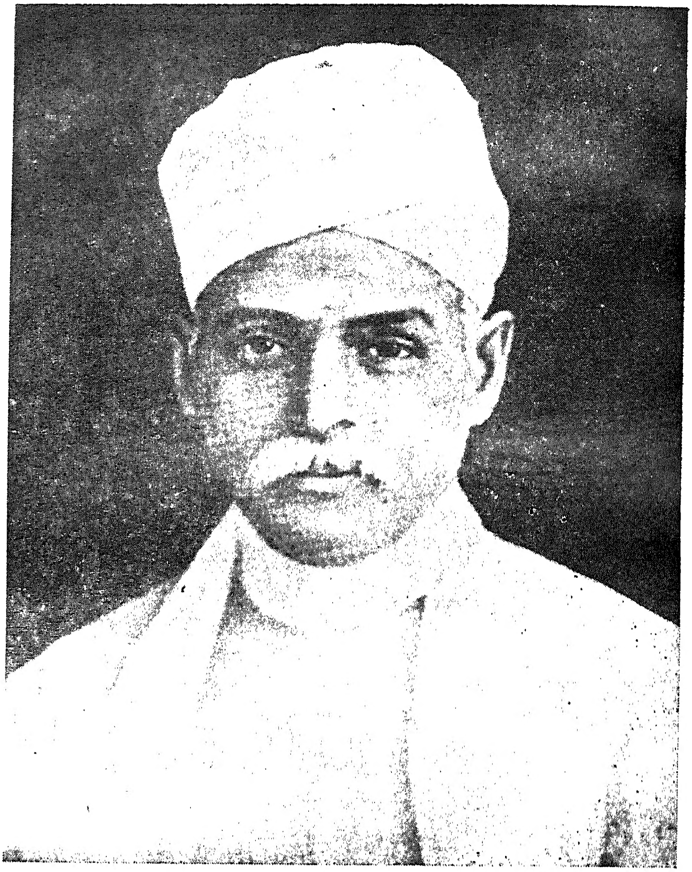
को

जिनसे महामना जन्म-शती के कार्य में

सदा प्रेरणा मिलती रही

सादर समर्पित

—सुनीत व्यास



महामना मदन मोहन मालवीय

पं० मदन मोहन मालवीय

हमारी मातृभूमि भारत माता आदि काल से रत्न-गर्भा रही है। न जाने कितने कर्मवीरों और तपस्वियों ने यहाँ जन्म लेकर अपने आदर्श चरित्र, प्रतिभा, कर्मनिष्ठा एवं त्याग और सेवा से संसार का सुधार और संगठन किया तथा देशवासियों को अन्धकार से निकाल कर ज्ञान का दीपक दिखाया है। भारत के ऐसे ही देवपुत्रों में आधुनिक महर्षि महामना पंडित मदन मोहन जी मालवीय थे।

मालवीय जी हमारे देश के नर रत्न थे। वे देश के महान् नेता थे, पंडित थे, ज्ञानी थे, समाज-सुधारक थे, पर हम सब बच्चे यह क्या जानें---हमारे लिये तो वे श्रद्धा और प्रेम की मूर्ति थे। वास्तव में मालवीय जी एक महान् पुरुष थे। महापुरुषों के बारे में कुछ लिखना एक प्रयास मात्र है किन्तु इससे मन को संतोष होता है कि हमको एक महापुरुष के बारे में कुछ सोचने विचारने का सौभाग्य तो प्राप्त हुआ। हम वास्तव में एक ऐसे महापुरुष की जीवन-कहानी बताने जा रहे हैं जिनका

जीवन त्याग, तपस्या और साधना का जीवन था, जिन्हें "स्व" की कभी चिन्ता नहीं थी और जिन्होंने अपना जीवन परहित, समाजहित और देशहित के कार्यों के लिये उत्सर्ग कर दिया।

वास्तव में धन्य है उस देश की मिट्टी, जहाँ ऐसे देवतुल्य व्यक्ति का उदय हुआ!

प्रारम्भिक जीवन

मालवीय जी का जन्म पौष कृष्ण ८ वैक्रमाब्द १९१८ तदनुसार २५ दिसम्बर सन् १८६१ को प्रयाग में हुआ। उनके जन्म से पूस की कृष्णाष्टमी उसी प्रकार से पुनीत हो गई जैसे कृष्णावतार से भादों की कृष्णाष्टमी। मालवीय जी के पिता का नाम पं० ब्रजनाथ मालवीय तथा माता का नाम श्रीमती मूना जी था। किसको कल्पना थी कि प्रयाग के एक छोटे से साधारण मुहल्ले में जन्म लेने वाला बालक आगे चल कर इतना महान् निकलेगा। वास्तव में धन्य हैं ऐसे माता-पिता जिन्हें ऐसे बालक को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

एक कहावत है—होनहार बिरवान के होत चीकने पात अर्थात् जो आदमी आगे चलकर कुछ बड़े



महामना के पूज्य पिता पं० ब्रजनाथ मालवीय

काम करने वाले होते हैं, उनके लक्षण बचपन से ही प्रकट होने लगते हैं। बचपन से ही उनके माता-पिता को ऐसा लगता था कि यह बालक आगे चल कर होनहार होगा। बालक के चरित्र निर्माण तथा उसके भविष्य के संवारने में माता-पिता का बड़ा हाथ होता है। बालक मदन मोहन के माता-पिता उच्च कोटि के आदर्शवान् ब्राह्मण थें। अध्ययन, अध्यापन एवं ईश्वर की आराधना ही उनके जीवन का प्रमुख ध्येय था। वे साधारण स्तर के सीधे-साधे व्यक्ति थे। यद्यपि उनकी आर्थिक अवस्था कोई बहुत अच्छी नहीं थी, तथापि संतोष ही उनके जीवन की पूँजी थी। सम्पूर्ण परिवार सुखी एवं सदाचारी था। ऐसे महान् पिता के घर जन्म लेकर बालक मदन मोहन के हृदय में धर्म, जाति एवं देश के प्रति सच्ची सेवा-भावना का उदय होना स्वाभाविक ही था। उनकी माता साध्वी और स्नेहमयी महिला थीं। उनकी उदारता और सहानुभूति के सम्बन्ध में जितना कहा जाय थोड़ा है। इस प्रकार बालक मदन मोहन का लालन-पालन बड़े ही स्वस्थ एवं पवित्र वातावरण में हुआ।

बालक मदन मोहन की प्रारंभिक शिक्षा घर से ही आरम्भ हुई। घर की शिक्षा के अन्तर्गत उनके पिता ने उन्हें केवल अक्षर-ज्ञान ही नहीं कराया बल्कि संस्कृत

तथा धर्म-ग्रन्थों की शिक्षा भी दी। आगे चलकर मदन मोहन का नाम हरदेव गुरु की संस्कृत पाठशाला में लिखाया गया। यहाँ से विद्या समाप्त करने पर उनको किसी स्कूल में भरती कराने का प्रश्न उठा। अब मदन मोहन को जिला विद्यालय में अंगरेजी पढ़ने के लिये भेज दिया गया। अपने विद्यार्थी जीवन से ही मदन मोहन सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगे जो कालान्तर में बढ़ती ही गई। उनकी रग-रग में सेवा और परोपकार की भावना भरी हुई थी। विद्या के साथ ही संगीत में भी उनकी विशेष अभिरुचि थी। सूर, तुलसी और मीरा के भजन वे बहुत गाया करते थे।

मैट्रिक परीक्षा पास करने के कुछ ही दिनों बाद बीस वर्ष की आयु में मदन मोहन का विवाह कुन्दन देवी के साथ हुआ। इसी समय उनका दाखिला म्योर सेन्ट्रल कालेज, प्रयाग में हुआ। वास्तव में वहीं उनके व्यक्तित्व के विकास का नया पृष्ठ खुला। सन् १८८१ में मदन मोहन ने म्योर सेन्ट्रल कालेज, प्रयाग से एफ० ए० की परीक्षा और सन् १८८४ ई० में कलकत्ते से बी० ए० तथा १८९१ ई० में एल० एल० बी० की परीक्षा पास किया।

मदन मोहन बचपन ही से बड़े विनोदी थे। कालेज



महामना की माता श्रीमती मूना देवी

जीवन में उन्होंने 'जेंटिलमैन' नामक एक प्रहसन लिखा था, जिसमें उन्होंने दो कविताएँ लिखी थीं। एक में झक्कड़ सिंह के रूप में अपना चित्रण किया था तथा दूसरे में उन्होंने उस समय के पढ़े-लिखे 'जेंटिलमैनों' का मज़ाक उड़ाया था।

झक्कड़ सिंह

गरे जुही के हैं गजरे पड़े रंगीन डुपट्टा तन।
भला क्या पूछिये धोती तो ढाके से मँगाते हैं॥
कभी हम वारनिश पहने, कभी पंजाब का जोड़ा।
हमेशा पास डंडा है, ये झक्कड़ सिंह गाते हैं॥
न ऊधो से हमें लेना, न माधो का हमें देना।
करें पैदा जो खाते हैं व दुखियों को खिलाते हैं॥
नहीं डिप्टी बना चाहें न चाहें हम तसिल्दारी।
पड़े अलमस्त रहते हैं यूँहीं दिन को बिताते हैं॥
न देखें हम तरफ उनकी जो हमसे नैक मुँह फेरें।
जो दिल से हमसे मिलते हैं, झुक उनको देख जाते हैं॥
नहीं रहती फिकिर हमको कि लावें तीर औ लकड़ी।
मिले तो हलवे छन जावें, नहीं भूरी उड़ाते हैं॥
सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचड़े से गृहस्थी के।
छुटो फक्कड़पना ले लो, यही हम तो सिखाते हैं॥

हमें मत भूलना यारो, बसे हम पास मन मोहन।
हुई है देर जाते हैं, तुम्हारा शुभ मनाते हैं।।

जेंटिलमैन की दशा

अहले यूरप पूरा जेंटिलमैन कहलाता है हम।
डोन्ट से बाबू टूमी मिस्टर कहा जाता है हम।।
गंगा जाना पूजा जप-तप छोड़ो ये पाखंड सब।
घूरने में मुँह को गिरजाघर में नित जाता है हम।।
भाँग-गाँजा चरस चंडू घर में छिप-छिप पीते थे।
अब तो बे खटके हमेशा 'वाईन' ढरकाता है हम।।
हिन्दुओं का खाना-पीना हमको कुछ भाता नहीं।
बीफ चमचे से कटे होटल में जा खाता है हम।।
बाबू औ चाचा कहाना लाइक हम करता नहीं।
पापा कहना अपने बच्चों को भी सिखलाता है हम।।
कोट और पतलून पहिने हैट सिर पर धरे।
ईवनिंग में वाक करने पार्क को जाता है हम।।

प्रारम्भ में मालवीयजी 'मस्त' उपनाम से हास्यरस की कविता लिखा करते थे। इन कविताओं से तत्कालीन जेन्टिलमैनों के प्रति घृणा स्पष्ट रूप से प्रगट होती है।

अभिनेता मालवीय जी

प्रयाग में उन दिनों एक आर्य नाटक-मंडली थी जिसमें नगर के प्रायः सभी प्रमुख नागरिक सदस्य थे। एक बार उस मंडली ने कालिदास कृत शकुन्तला नाटक खेलने का निश्चय किया। नाट्य संसार के सर्वश्रेष्ठ नाटक की प्रधान नायिका महाकवि कालिदास की कृति शकुन्तला का अभिनय करना कोई हँसी-दिल्लगी नहीं थी। तो आर्य नाटक-मंडली की कौन गिनती ? परदा उठा, नाटक शुरू हुआ। दर्शकगण मंत्र मुग्ध हो कर शकुन्तला के पार्ट को देखते रहे। जब नाटक समाप्त हुआ तो दर्शकगणों की जबान पर केवल यह था----शकुन्तला का पार्ट बड़ा ही लजीला, सजीव, तथा गज़ब का हुआ है। यह अभिनय किसने किया था ? कोई पहेली नहीं थी ? कोई रहस्य की बात नहीं थी ? सब लोग जानते थे कि इस पार्ट को सफलतापूर्वक निभाने वाला और कोई नहीं, मदन मोहन थे।

इसी प्रकार एक बार कालेज में मर्चेन्ट आफ वेनिस अँग्रेजी का नाटक खेला गया। इसमें 'पोर्शिया' का पार्ट मदन मोहन ने किया। लोगों का कहना है कि यदि कोई अँग्रेज महिला भी इस पार्ट को करती तो शायद इतनी खूबी से न कर पाती जितनी कि मदन मोहन ने किया।

जिस समय पोर्शिया ने दया के गुणों का वर्णन करना शुरू किया, ऐसा जान पड़ा मानो आकाश से दया के अमृत की वर्षा हो रही है और सारा संसार उस अमृत की एक-एक बूँद पाने के लिये तरस रहा है। इस सफलता का कारण था—मदन मोहन का सौम्य और लावण्यमय रूप तथा उनका आकर्षक व्यक्तित्व।

मदन मोहन ने अपने कालेज जीवन में ही राष्ट्रीय वेष धारण किया जो जीवन पर्यन्त उनके शरीर पर रहा। उनकी वेष भूषा बड़ी साधारण थी। एक विशेष प्रकार की सफेद पगड़ी, अंगा, डुपट्टा और पायजामा। अध्यापक होने के पश्चात् वे सफेद मोजा भी पहनने लगे। वे एक मोटी छड़ी सदा अपने साथ रखते थे। काले कपड़ों से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। श्वेत वस्त्र उनके भव्य एवं निर्मल स्वरूप को दर्शाता था।

विद्यालय जीवन में मदन मोहन पर सब से अधिक और स्थायी प्रभाव उनके संस्कृत के प्राध्यापक पं० आदित्य राम भट्टाचार्य का पड़ा। इन्होंने मदन मोहन जैसे रत्न को एक पारखी जौहरी की दृष्टि से आँका, परखा तथा बड़ी कुशलता से सँवारा। उन्होंने एक बार कहा था 'यदि संसार में मुझे किसी पर गर्व है तो वह है मेरा प्रिय शिष्य मालवीय'।

एक सफल अध्यापक

जीवन में बहुत से कार्य ऐसे होते हैं, जिनको करने की इच्छा न होने पर भी परिस्थिति वश करना ही पड़ता है। मालवीय जी के समक्ष भी उनके छात्र जीवन में ही कुछ इसी प्रकार की परिस्थिति आई। मालवीय जी चाहते थे कि मैं आगे पढ़ूँ। उनके गुरु पंडित आदित्यराम जी की भी बड़ी प्रबल इच्छा थी, किन्तु आर्थिक संकट के कारण उन्हें शीघ्र ही जीविकोपार्जन का सहारा लेने के लिये बाध्य होना पड़ा। सन् १८८५ में मदन मोहन, बी० ए०, पचास रुपये माह पर अपने पुराने स्कूल में अध्यापक हो गये। अब इनके परिवार के दिन फिरते दिखाई पड़े। अध्यापक में जो गुण होने चाहिये उनकी उनमें प्रचुरता थी। थोड़े ही दिनों में विद्यार्थी उनसे हिलमिल गये। जिन्होंने इनसे पढ़ा है उनका कहना है कि ऐसा योग्य अध्यापक देखने में नहीं आया।

उनके अध्यापन कुशलता की एक घटना बड़ी महत्वपूर्ण है। वे एक बार घूमते-घामते हिन्दू विश्वविद्यालय के टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में गये। वहाँ पर कुछ शिक्षक पढ़ा रहे थे। उन्हें पढ़ाते देख कर मालवीय जी को प्रयाग का गवर्नमेन्ट हाई स्कूल याद आ गया। उनके हृदय के भीतर बैठा हुआ अध्यापक पुरानी याद ले कर जाग पड़ा।

उन्होंने तुरन्त ही वहाँ काम करने वाले अपढ़ मिस्त्रियों एवं मज़दूरों को एकत्र किया और कहा कि देखो हम तुम्हें लिखना सिखाते हैं। और थोड़ी ही देर में उन्होंने इस खूबी से उन्हें समझा कर 'राम' लिखना बताया कि अक्षरों का ज्ञान हुए बिना भी, वे लोग 'राम' लिखने लगे। उनका यह पढ़ाना देख कर टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के अध्यापक भी दंग रह गये। वास्तव में मालवीय जी में अध्यापन की ईश्वरीय प्रतिभा विद्यमान थी। अपने वेश, वाणी तथा व्यवहार से वे एक आदर्श अध्यापक रहे। उन्हें स्वच्छता और अनुशासन के महत्त्व पर बड़ी आस्था थी। मालवीय जी के पढ़ाने के ढंग और विद्यार्थियों से इनके व्यवहार को देख कर थोड़े समय में ही उनकी पदोन्नति हो गई। स्कूल में अध्यापक मालवीय जी की एक और घटना बड़ी ही मनोरंजक है। एक बार लड़कों की परीक्षा हो रही थी। मालवीय जी 'निरीक्षक' थे। एक विद्यार्थी नकल कर रहा था। मालवीय जी ने ताड़ लिया और झट उसे कमरे से निकाल दिया। वह लड़का एक नम्बर का बदमाश था। कहने लगा समझ लेंगे। पर मालवीय जी इस प्रकार की गीदड़ धमकी में आने वाले तो थे नहीं। इस घटना के बाद मालवीय जी से लोगों ने पैदल घर से आने के लिये मना किया। पर मालवीय जी ठहरे

धुन के पक्के, वे बराबर पैदल ही जाते रहे। उस लड़के की हिम्मत न पड़ी कि कुछ करे। मालवीय जी के व्यक्तित्व का उस दुष्ट लड़के पर इतना असर हुआ कि वह आ कर उनके पैरों में गिरा और माँफी माँगी।

पत्रकार मालवीय जी

सन् १८८६ की राष्ट्रीय महासभा ने मालवीय जी को सारे भारतवर्ष से परिचित करा दिया। जब मालवीय जी ने राष्ट्रीय महासभा के मंच से अपना पहिला ओजपूर्ण भाषण दिया तो लोगों को दृढ़ विश्वास हो गया कि यह प्रयाग का मामूली ब्राह्मण नहीं है, वरन् आगे चल कर सारा देश अपनी रास इस जवान के हाथ में सौंप देगा। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कालाकांकर के महाराज रामपाल सिंह से मालवीय जी की घनिष्टता यहीं से बढ़ी। रामपाल सिंह उनसे इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने मालवीय जी से अपने पत्र 'हिन्दुस्थान' का सम्पादकत्व ग्रहण करने का आग्रह किया। मालवीय जी ने उनके अनुरोध को इसलिये स्वीकार नहीं किया कि उन्हें धन का प्रलोभन था, अपितु उनको यह आशा थी कि पत्रकारिता के माध्यम से वे देश की सेवा कर सकेंगे।

मालवीय जी के संरक्षण में 'हिन्दुस्थान' ने काफी सफलता और उन्नति प्राप्त की। उनकी लेखनी से मँज कर 'हिन्दुस्थान' चमक उठा। ग्राहकों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती चली गई। उनके लेख बड़े प्रभावशाली होते थे। सभी विषयों पर उनके सम्पादकीय लेख निकलते थे। सबमें एक असर होता था, जोर होता था और आकर्षण होता था।

ढ़ाई वर्ष तक मालवीय जी ने बड़ी कुशलता से 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन किया। कुछ समय बाद राजा साहब के व्यक्तिगत जीवन में कुछ असंयम देखा तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। राजा साहब ने अपनी भूल पर पश्चाताप किया किन्तु मालवीय जी नहीं माने। तब भी गुणग्राही राजा ने मालवीय जी को वकालत पढ़ने के लिये प्रेरित किया और आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन छोड़ने के बाद मालवीय जी कुछ समय तक 'इण्डियन-ओपीनियन' के भी सम्पादक रहे। उन्होंने इसमें भी बड़ी कुशलतापूर्वक कार्य को निभाया। मालवीय जी का दृष्टिकोण यह कदापि नहीं था कि केवल अपनी चलायी पत्र-पत्रिकाओं का ही संपादन किया जाय, वरन् वे तो दूसरों के द्वारा प्रकाशित पत्र एवं पत्रिकाओं पर भी ध्यान देना चाहते थे। इसी दृष्टि से

जब सन् १८९९ में श्री सच्चिदानन्द सिन्हा ने 'हिन्दुस्तान रिव्यू' निकाला तो मालवीय जी ने उन्हें हर प्रकार का सहयोग प्रदान किया। इसी प्रकार सन् १९०३ में प्रारंभ में 'इन्डियन-पीपुल' को भी उनका सहयोग मिला।

अभ्युदय

सन् १९०७ में वसंत पंचमी के दिन 'अभ्युदय' हिन्दी दैनिक समाचार पत्र का उदय हुआ। प्रसिद्ध विद्वान और लेखक पं० बालकृष्ण भट्ट ने ही उसका नामकरण किया। मालवीय जी ने बड़ी लगन से इसका सम्पादन किया। दो वर्ष तक मालवीय जी इसको प्रोत्साहन देते रहे तथा बड़े उत्साह से इसकी प्रगति में हाथ बँटाते रहे। जब दो वर्ष बाद मालवीय जी प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य हो गये तो उन्होंने अभ्युदय का भार स्वयं भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन के हाथों में सौंप दिया। उनके बाद थोड़े समय तक पं० सत्यानन्द जोशी और बाद में १९१० से मालवीय जी के भतीजे पं० कृष्णाकान्त मालवीय स्थायी रूप से 'अभ्युदय' के सम्पादक रहे।

लीडर

कुछ बातें जीवन में ऐसी हो जाती हैं कि मनुष्य को उसकी घोषणा कर देने मात्र से भयंकर एवं भीषण

फल को प्राप्त करना पड़ता है। सन् १६०५ में जब लार्ड कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े कर दिये तो बंगाल ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष एक भूखे सोये हुये सिंह की भाँति जागकर गरज उठा, जिससे एक बार सम्पूर्ण भारत में ज्वालामुखी की भाँति एक कोने से दूसरे कोने तक इस अपमान का बदला लेने की प्रतिक्रिया भड़क उठी। देश की ऐसी परिस्थिति में एक दैनिक अंग्रेजी पत्र का निकाला जाना आवश्यक हो गया। मालवीय जी के परम उद्योग से २४ अक्टूबर सन् १६०६ ई० को विजयदशमी के दिन प्रयाग से सब को मार्ग दिखाने के लिये 'लीडर' निकाला गया। उसका इतिहास जो स्वयं मालवीय जी ने 'लीडर' में मशीन लगने के समय वर्णन किया था वह नीचे दिया जा रहा है —

'लीडर' के स्थापित होने के पूर्व एक दैनिक समाचार पत्र की इलाहाबाद में बड़ी आवश्यकता थी। सन् १८७६ ई० में स्वर्गीय पं० अयोध्यानाथ जी ने 'इंडियन हेराल्ड' निकाला था। वह पत्र तीन वर्ष तक चला पर अभाग्यवश उसके बाद बन्द हो गया। 'लीडर' के स्थापित होने का एक यह भी कारण था। मैंने वकालत छोड़ने का निश्चय कर लिया था और उस समय मेरा यह विचार था कि सार्वजनिक कार्यों से अलग हो जाऊँ जिससे हिन्दू विश्वविद्यालय

का कार्य ठीक से कर सकूँ। उस समय मेरे मन में यह आया कि सार्वजनिक जीवन से अलग होने से पहिले एक पत्र यहाँ अवश्य स्थापित हो जाना चाहिये। मैंने इसका कुछ मित्रों से जिक्र किया और उन्होंने प्रसन्नता से उसके लिये धन दे दिया। आरम्भ में इसके लिये चौतीस हज़ार रुपया जुटा। इतना रुपया एक दैनिक पत्र चलाने के लिये बहुत कम था। लेकिन मुझे अपने मित्रों पर विश्वास था। 'लीडर' ने निःस्वार्थ भाव से देश और प्रान्त की बड़ी लगन से सेवा की है। श्री चिन्तामणि और पं० कृष्णाराम मेहता दोनों 'लीडर' की जान हैं। 'लीडर' के बढ़ते हुये प्रभाव को और उसकी सेवाओं को सारे प्रान्त ने स्वीकार किया है। सरकारी अधिकारियों ने भी यह बात स्वीकार की है कि 'लीडर' सार्वजनिक प्रश्नों का न्ययोचित दृष्टि से विचार करता है।''

श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त और श्री सी० वाई० चिन्तामणि उसके सम्पादक मंडल में नियुक्त हुए। इसकी सारी सफलता का श्रेय इसके जन्मदाता और युवकों में उत्साह का संचार करने वाले पूज्य पं० मदन मोहन मालवीय जी को है। 'लीडर' की स्थापना के कुछ ही दिनों बाद सन् १९१० में मालवीय जी के उद्योग से प्रयाग में 'मर्यादा' नामक पत्रिका निकलनी शुरू हुई। 'मर्यादा' काफी समय

तक अपनी तथा अपने संस्थापक की मर्यादा का पालन करती रही ।

वकील के रूप में

सन् १८९३ ई० में पं० मदन मोहन मालवीय जी ने प्रयाग के उच्च न्यायालय में वकालत प्रारम्भ की। थोड़े ही दिनों में एक कुशल वकील के रूप में मालवीय जी प्रसिद्ध हो गये । किन्तु मालवीय जी को वकालत पसंद नहीं थी । उन्होंने तो अपना जीवन राष्ट्र की सेवा तथा दूसरों के हित के लिये अर्पित कर दिया था । वकालत छोड़ने के बाद वे अपने उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिये प्राण पण से जुट गये । वकालत से सम्बन्धित यह घटना उनकी उदारता एवं सेवा भाव को प्रदर्शित करती है ।

एक दिन की बात है, मालवीय जी अपने दफ्तर से उठ ही रहे थे तो एक अनजान व्यक्ति रूआँसा हो कर आया और बोला, 'आज हाईकोर्ट में मेरा मुकदमा है, मुंशी कालिन्दी प्रसाद मेरे वकील हैं पर वे कहीं बाहर चले गये हैं । मैं बहुत गरीब हूँ । जब किसी दूसरे वकील के पास जाता हूँ, तो उनका मुंशी पहिले पैसा माँगता है, जो मेरे पास नहीं है । समझ में नहीं आता क्या करूँ ? आप धर्मात्मा हैं इसीलिये, आपकी शरण में आया हूँ । 'गरीब',

'शरणागत' तथा 'धर्म' ये तीनों बातें इतनी अचूक थीं कि मालवीय जी का कोमल हृदय इनके आगे विंध जाता था। उस दिन मालवीय जी बहुत व्यस्त थे। तुरन्त ही उस व्यक्ति को एक खास आदमी के साथ मुंशी गोकुल प्रसाद के पास भेज दिया। उस गरीब आदमी का काम बिना पैसे कौड़ी के हो गया। यह थी मालवीय जी की उदारता, उनकी दूसरों के प्रति सहानुभूति तथा दया। आये दिन मालवीय जी के पास इसी प्रकार के शरणागत तथा गरीब आया करते थे और मालवीय जी अपने भरसक उनके कष्टों का निवारण करते थे। सच ही वे मनुष्य रूप में देवता तुल्य थे।

मालवीय जी विद्यानुरागी

भारती भवन

प्रयाग में भारती-भवन पुस्तकालय की स्थापना में मालवीय जी का बहुत बड़ा हाथ था। अब तो इस पुस्तकालय के कारण यह मुहल्ला ही भारती-भवन कहलाने लगा है। भारती-भवन का नाम मालवीय जी से ऐसा जुड़ गया है मानो यह पुस्तकालय मालवीय जी का एक अंग हो। पुस्तकालय की स्थापना १५ दिसम्बर सन् १८८९ ई०

में हुई थी। इसके संस्थापक लाला ब्रजमोहन लाल जी भल्ला थे। आज भी भल्ला परिवार के लाला शिव प्रकाश भल्ला का सक्रिय सहयोग इस पुस्तकालय को प्राप्त है। मालवीय जी इस पुस्तकालय के आजन्म सभापति रहे।

भारती भवन पुस्तकालय का मुख्य लक्ष्य संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकों की व्यवस्था करना तथा जन-साधारण को निःशुल्क विद्या लाभ पहुँचाना है। इस समय इस पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की लगभग तीस हजार पुस्तकें हैं। मार्च सन् १९६० में इस पुस्तकालय की सत्तरवर्षीय जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। इस अवसर पर महिला एवं बाल कक्ष को खोलने की विशेष व्यवस्था की गई।

मैकडोनेल्ड यूनिवर्सिटी : हिन्दू बोर्डिंग हाउस

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की जब नींव पड़ी तब चारों ओर से विद्यार्थी आने लगे। छात्रावास की कमी होने से हिन्दू विद्यार्थियों को विशेष कष्ट होने लगा। मालवीय जो ने इनके कष्ट को भलीभाँति समझा और हिन्दू विद्यार्थियों के रहने की सुविधा के लिये एक छात्रावास का निर्माण कराया जो 'मैकडोनेल्ड बोर्डिंग हाउस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परन्तु आज यह छात्रावास

मदन मोहन मालवीय यूनिवर्सिटी कालेज के नाम से विख्यात है। मालवीय जी ने किस किस तरह भ्रमण कर इस छात्रावास के लिए रुपया एकत्रित किया इसको एक ही घटना देना पर्याप्त होगा।

प्रयाग में जब हिन्दू छात्रावास का निर्माण कार्य जारी था, उस समय मालवीय जी राय बहादुर लाला सांवलदास के पास गए और उनसे एक हज़ार रुपये देने को कहा जिससे उनके नाम से एक कमरा बन जाय। मालवीय जी की मधुर वाणी से वे इतने प्रभावित हुये कि बिना सोचे समझे उन्होंने एक हज़ार का चेक उन्हें दे दिया। बाद में उन्होंने सोचा कि इस पर कुछ विचार करना चाहिये था, किन्तु पंडित जी की प्रभावशाली प्रार्थना से वह उनके वश में हो गये थे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्मरण आते ही उसके निर्माता मालवीय जी महाराज का ध्यान तुरन्त ही मस्तिष्क में आ जाता है। हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी के जीवन की एक महान् एवं अनुपम कृति है। विश्वविद्यालय के कण-कण में मालवीय जी के स्वप्न

निहित हैं। वास्तव में आत्म-समर्पण करने वाले एक महान् पुरुष की यह विश्वविद्यालय विभूति है। गाँधी जी ने 'नवजीवन' में लिखा था 'मालवीय जी के काम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा है हिन्दू विश्वविद्यालय।' इसके पहिले सन् १९३१ ई० में गाँधी जी ने लिखा था—

'काशी विश्वविद्यालय के मालवीय जी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवीय जी का प्राण है।' यह जान लेने के पश्चात् कि हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी के जीवन का एक महत्वपूर्ण कार्य है, हमको उत्सुकता हो सकती है कि आखिर इतना विशाल विश्वविद्यालय बना कैसे, उसका सूत्रपात कैसे हुआ। हम अब संक्षेप में इन सभी बातों का उल्लेख करेंगे।

सूत्रपात

मालवीय जी प्रारम्भ से ही चिन्तनशील थे। जब वे कालेज में पढ़ते थे तभी से उनके मन में एक तरंग उठती थी कि हमारे देश के विद्यार्थियों को अध्ययन के लिये विदेश क्यों जाना पड़े, फिर विद्यार्थियों का नैतिक पतन देखकर उनके मन में यह भावना आई कि क्यों न पुराने आश्रम के आधार पर नये आश्रम खोले जायँ।

मालवीय जी के मन में प्रयाग से काशी तक गंगा जी के किनारे-किनारे ऐसे ही आश्रम बनाने की धुन थी। उन्होंने बहुतों से यह बात कही। किसी ने सुना और हँस दिया। किसी ने कहा पागल हुए हो क्या ? पर उस 'पागल' को धुन थी। वह अपने अकेले समय में ढ़ाई हज़ार वर्ष पहिले के नालन्दा विश्वविद्यालय का स्वप्न देखा करता था जिसमें अध्यापकों के सौ आसन लगे हुये हैं, गुरु और शिष्य सभी मिलकर काम कर रहे हैं।

कभी वह नौजवान तक्षशिला का विश्वविद्यालय देखता था, कभी विक्रमशिला का विश्वविद्यालय। आज हम जिसकी कथा कह रहे हैं वह सचमुच ही ऐसा था। पहिले उसने कल्पना की, फिर उस कल्पना की मूर्ति में जान पड़ने लगी, फिर उसका स्वरूप बनना शुरू हुआ, और देखते ही देखते काशी में गंगा के किनारे खेतों के बीच से गेरुआ वस्त्र पहन कर वह कल्पना विशाल रूप धारण करने लगी। सभी ने आँखें मलकर देखा, लोगों को सपना सा प्रतीत होने लगा, किन्तु वह सपना नहीं वरन् सत्य था। ऐसा सत्य जिसको झुठलाया नहीं जा सकता था। यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है।

सन् १९०४-५ में सर्वप्रथम एक विश्वविद्यालय के संस्थापन की चर्चा छिड़ी। मालवीय जी ने पहिले पहल

काशी नरेश प्रभुनारायण सिंह के सभापतित्व में काशी विश्वविद्यालय का प्रस्ताव रखा। जोर-शोर से उबाल आया परन्तु कई ओर से ठंडा पानी पड़ने से शान्त हो गया। १९०९ ई० में अलीगढ़ में मुस्लिम यूनिवर्सिटी की चर्चा हुई और बात आगे बढ़ गयी। मालवीय जी को सहारा मिल गया। उन्होंने विश्वविद्यालय की चर्चा फिर चलायी। सिद्धान्तों को लेकर प्रस्ताव फिर उपस्थित हुआ। मालवीय जी ने अपने स्वयं के बल पर कलकत्ते के लिये प्रस्थान किया और यहाँ प्रचार आरम्भ कर दिया। कलकत्ता नगर के बड़े-बड़े महाजनों, साहूकारों और जनता ने भी दिल खोल कर इस कार्य में धन और मन से सहयोग प्रदान किया। इसी समय श्रीमती एनीबेसेन्ट के भी तीन व्याख्यान भारतीय विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में कलकत्ते में हुए। इसके उपरान्त एक सार्वजनिक सभा में विश्व-विद्यालय की घोषणा की गयी। कलकत्ते में आर्थिक सहायता का पाँच लाख का वचन तथा कुछ नक़द भी मिला।

मुज़फ्फरपुर में एक भिक्षा माँगने वाली भंगिन ने अपने दिन भर की कमाई इस यज्ञ में समर्पण कर दिया। इसी प्रकार एक व्यक्ति ने एक फटी कमीज़, जो उसके बदन पर पड़ी थी, उतार कर प्रदान कर दी थी। इन

चीज़ों को नीलाम करने पर सैकड़ों रुपये मिले थे और वे वस्तुएँ भी विश्वविद्यालय को वापस कर दी गई थीं कि ये उसके संग्रहालय में विवरण के साथ सुरक्षित रखी जायँ। यहीं पर एक बंगाली महोदय ने पाँच हज़ार रुपया दान किया था और पुनः अपने घर पहुँचने पर उनकी पत्नी ने अपना बहुमूल्य स्वर्ण कंकण मालवीय जी को भेंट दिया।

विश्वविद्यालय की दुन्दुभी बजाते हुये मालवीय जी और उनके साथी कलकत्ते से लाहौर पहुँचे। बीस पच्चीस लाख का वचन मिल चुका था। काशी के स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्त मालवीय जी के अनन्य भक्त थे। वे लिखते हैं :—"हिन्दू विश्वविद्यालय का आन्दोलन ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के सदृश समुद्र की ओर वेग से बह रहा था। उसके आगे के पथ को रोकना असंभव हो चुका था। अब शिमला शिखर से बाबू (मालवीय जी) के लिये बुलावा आया। बाबू के साथ में मैं भी शिमला पहुँचा। परलोक-वासी राजा हरनामसिंह की कोठी में हम लोग ठहराये गये। बाबू उस समय वाइसराय से मिलने गये और वहाँ से बड़े प्रसन्न आये और मुझे बुलाकर बोले कि वाइसराय ने विश्वविद्यालय को अपनाने का वचन दे दिया है। मेरे काटो तो बदन में खून नहीं। मैं तो सन्न रह गया और

मेरे मुख से हठात् निकल गया—यह तो हिन्दू विश्व-विद्यालय की मृत्यु-घोषणा है। अस्तु हम लोग ऊपर से उतर कर फिर लाहौर आ गये। लाहौर की वृहत् सभा में लाला लाजपतराय ने कहा—चार्टर मिले या न मिले हिन्दू यूनिवर्सिटी अवश्य रहेगी।" जिसके उत्तर में बाबू ने कहा कि चार्टर मिलेगा, फिर मिलेगा, और हिन्दू यूनिवर्सिटी बनेगी। अब तो चारों ओर से लोगों की सहानुभूति उमड़ने लगी। लाहौर से आगे बढ़ा। मेरठ में बड़े समारोह से सभा हुई। बारह घंटे तक का लम्बा जुलूस निकला। परलोकवासी महाराज दरभंगा ने सभापति बनना स्वीकार किया और पाँच लाख रुपये का दान भी दिया।

मालवीय जी त्रिवेणी बन गये, हिन्दू विश्वविद्यालय पर्व बन गया और सारे देश ने जी खोलकर इस पर्व पर धन लुटाया। जहाँ-जहाँ डेपूटेशन जाता था, वहाँ-वहाँ कई स्टेशन पहिले से ही स्वागत प्रारम्भ हो जाता था। लोग चिल्ला उठते—हिन्दू धर्म की जय, मालवीय जी की जय। इस प्रकार यह डेपूटेशन सारे भारत में घूमता रहा—धन एकत्रित करता रहा। सन् १९११ में हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसायटी की रजिस्ट्री हो ही चुकी थी, सन् १९१५ को हिन्दू विश्वविद्यालय बिल पेश हुआ और



काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का प्रवेश द्वार

स्वीकृत हो गया । ४ फरवरी सन् १९१६ को बसंत पंचमी के दिन काशी में लार्ड हार्डिञ्ज ने विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया । इसे हम संक्षेप में काशी विश्वविद्यालय का सूत्रपात कह सकते हैं । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रथम परीक्षा सन् १९१८ में हुई थी । लगभग इसी समय (१९१६-२०) के बीच विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ३९० तथा अध्यापकों की कुल संख्या ७२ थी ।

इतने विशाल विश्वविद्यालय की स्थापना करना न तो कोई हँसी खेल था और न एक साधारण मनुष्य के बस की ही बात । यह तो महामना जैसे आत्म-विश्वासी, एवं दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति के लगन का परिणाम है जिन्होंने भारत ही नहीं वरन् विश्व के सम्मुख एक ऐसी अनुपम कृति को रखा जिसकी कथा कहने के लिये एक युग चाहिये और पढ़ने के लिये अमित संतोष । किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यह एक दीन ब्राह्मण की भव्य कल्पना की सजीव सृष्टि हैं । कल जो स्वप्न था वह आज आँखों के आगे है ।

विश्वविद्यालय निकट से

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भव्य प्रवेशद्वार के सामने मालवीय जी की विशाल मूर्ति है । जहाँ विश्वविद्यालय

अनेक प्रकार की कलाओं एवं विद्याओं का केन्द्र है, वहाँ वह एक बहुत बड़ा धार्मिक क्षेत्र भी है। इस विश्वविद्यालय का उद्देश्य केवल डिग्री बाँटना ही नहीं था, वरन् उसका उद्देश्य यह था— जहाँ एक विद्यार्थी शिल्पकला और यन्त्र-कला सीखता हो वहाँ वह मशीन को ही सब कुछ न समझ बैठे बल्कि मनुष्यों के भाग्य का शासन करने वाले उस परमात्मा का भी स्मरण करे और मन, वचन तथा कर्म से सच्चा हिन्दू बन जाय। मालवीय जी के समय में विश्वविद्यालय का वातावरण अत्यन्त ही स्वस्थ एवं नियमित था। मालवीय जी हमेशा यह चाहते थे कि वहाँ के विद्यार्थी सदैव फूलें-फलें।

वास्तव में यह विश्वविद्यालय बहुत विशाल है। जिस ओर दृष्टिपात करिये बड़े-बड़े कालेज, छात्रावास, अध्यापकों के रहने के लिये सैकड़ों आवास तथा खेल-कूद के लिये बड़े-बड़े मैदान दिखाई पड़ते हैं। विश्व-विद्यालय के सभी भवन गेरुए रंग से पुते हैं, जिसके दर्शन मात्र से हृदय में एक धार्मिक एवं शुद्ध भावना की लहर दौड़ जाती है। जिस विश्वविद्यालय में बाइस मील लम्बी सड़कें और इतनी अधिक संख्या में भवन हों, उसे विश्वविद्यालय न कहकर एक छोटा सा नगर कहना उचित है। विश्वविद्यालय के मुख्य प्रवेश-द्वार से निकट

ही मालवीय जी का एक निवास-स्थान था जो अब 'मलवीय भवन' के नाम से विख्यात है। इस भवन के द्वार पर महामना की एक संगमरमर की मूर्ति है। इस भवन के अन्दर एक ओर मालवीय जी के नित्य व्यवहार की वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, खड़ाऊँ तथा पत्र आदि का संग्रहालय है तथा दूसरी ओर धार्मिक पुस्तकों का अच्छा पुस्तकालय है। इस मालवीय भवन में बच्चों के खेलने के लिये एक पार्क का भी निर्माण किया गया है।

मालवीय भवन से कुछ दूर आगे विश्वविद्यालय में स्थित विश्वनाथ जी के मन्दिर का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। मालवीय जी को विश्वविद्यालय के भीतर विश्वनाथ जी के मन्दिर के बनवाने की तीव्र लालसा थी। आज विश्व-विद्यालय में मालवीय जी की यह लालसा पूरी हो गई और इस मन्दिर के निर्माण का कार्य भी लगभग पूरा हो गया है। विश्वनाथ जी का मन्दिर बहुत विशाल है। इसके चारों ओर नहर है। मन्दिर के ऊपर के भाग में चारों ओर गीता के अठ्ठारहो अध्याय लिखे हुये है। इस मन्दिर के कारण यह विश्वविद्यालय एक तीर्थ स्थल बन गया है।

काशी विश्वविद्यालय में अनेक जिज्ञासु विश्व के

कोने-कोने से अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिये आते हैं। आज इस विश्वविद्यालय में लगभग नौ-हज़ार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, जिसमें करीब एक हजार छात्राएँ हैं। अध्यापकों की संख्या भी सात सौ के ऊपर ही है। आज इस विश्वविद्यालय पर लगभग सवा दो करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय होता है। विश्व-विद्यालय का पुस्तकालय भी बहुत बड़ा है। इस पुस्त-कालय में बहुत बड़ी संख्या में विभिन्न विषयों जैसे विज्ञान, दर्शन, इतिहास, कला एवं साहित्य की पुस्तकें विद्यमान हैं। बहुत से विद्वानों जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पं० जवाहर लाल नेहरू तथा डा० भगवानदास आदि का निजी-पुस्तकालय भी उपहार के रूप में पुस्तकालय में विद्यमान है, जो पुस्तकालय के ऊपरी कक्ष की गैलिरी में लगा है।

कुलपति के रूप में

मालवीय जी एक आदर्श कुलपति थे। क्या छात्रों के प्रति, क्या शिक्षकों के प्रति और क्या कर्मचारियों के प्रति, मालवीय जी का व्यवहार सदा समान होता था। उनका दृष्टिकोण एवं उनकी कार्य प्रणाली अपने ढंग की निराली थी। वे सभी को अपने अच्छे व्यवहार से अपने साँचे में ढाल लेते थे। मालवीय जी

का स्वभाव था कि वे छोटी बड़ी सभी बातों का निरीक्षण स्वयं किया करते थे और सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति भी किया करते थे। यही उनकी महत्ता कही जा सकती है। मालवीय जी के यहाँ गरीब छात्रों की बराबर भीड़ लगी रहती थी। वे सच्चे अर्थ में कुलपति थे। अभाव-ग्रत छात्रों को महामना नाना प्रकार से सहायता पहुँचाते थे, पैसे से, वस्त्रों से, पुस्तकों से, जाड़े में कम्बलों से और सबसे अधिक अपने प्यार भरे प्रोत्साहन से। वे प्रायः कहते तुम आर्य-संतान हो, आर्य की तरह चलो, आर्य की तरह रहो। 'आर्य' शब्द मालवीय जी को बड़ा प्रिय था। मालवीय जी जब विद्यालय के पुराने छात्रों से मिलते तो वे उनसे तीन प्रश्न करते :—

(१) संध्या करते हो ?

(२) दूध कितना पीते हो ?

(३) कितनी संतान हैं ?

बात-बात में तीन महावाक्य उनके मुँह से निकल पड़ता :—

(१) निर्बल के बलराम।

(२) बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय।

(३) हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम।

मालवीय जी का प्रतिदिन का यह नियम था कि वे

नित्य कर्म करने के पश्चात् किसी न किसी कालेज या छात्रावास में जाकर निरीक्षण करते थे। छात्रावास में लड़कों से उनके सुख-दुख के बारे में पूछते थे। एक दिन मालवीय जी जा रहे थे कि एक लड़का आता हुआ दिखाई पड़ा। उन्होंने रोक कर पूछा कि दूध पीते हो या नहीं ? उसने उत्तर दिया कि वह बहुत गरीब है, दूध पीने के लिये पैसे नहीं हैं। मालवीय जी जब घर लौटे तो उस लड़के के लिये दूध का प्रबन्ध करवा दिया। यह थी मालवीय जी के हृदय की विशालता एवं उदारता।

एक बार मालवीय जी रात्रि में किसी छात्रावास में गये। एक संस्कृत का विद्यार्थी चूल्हे पर दूध गरम कर रहा था। मालवीय जी ने उससे कहा कि इस तरह गंदगी फैलती है और इस पर नाराज़ होकर उस विद्यार्थी पर उन्होने पाँच रुपया का जुर्माना कर दिया। परन्तु घर जाकर मालवीय जी ने उसके पास पाँच रुपया भेज दिया जिससे वह उस जुर्माने को जमा कर दे और फिर भविष्य में ऐसा अपराध न करे।

पं० अम्बिका प्रसाद लिखते हैं :—

"जयकुमार नाम का एक मेरा छात्र आचार्य अंतिम वर्ष में पढ़ता था। छात्र बुद्धिमान तथा सुन्दर और बलिष्ट था। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। अन्त्येष्टि के

लिये घर गया। आने में विलम्ब हुआ। इसीलिये उपस्थिति पूरी न हो सकी। फलतः परीक्षा में बैठने की संभावना नहीं थी। मैंने कहा एक प्रार्थना पत्र लिखकर मालवीय जी के पास जाओ और वहाँ जाकर एक श्लोक पढ़ देना, जिसका भाव यह है—'द्रौपदी की रक्षा करने में जो तुम्हें जल्दी थी, जो जल्दी तुम्हें गजेन्द्र मोक्ष में थी, हे करुणानाथ ! वह तुम्हारी जल्दी (हमारे विषय में) कहाँ चली गई ?''

उस छात्र ने श्लोक रोकर पढ़ दिया। सुनकर मालवीय जी के नेत्रों में आँसू आ गये और लिख दिया 'ही शुड बी एडमिटेड' अर्थात् इसका एडमिशन होना चाहिये। उसी समय मैं तथा पं० कालीप्रसाद जी दोनों मिलने गये। हम दोनों को देखकर महाराज ने पंत जी से कहा कि वह प्रार्थना पत्र रजिस्ट्रार के यहाँ मत भेजो। इससे कुछ गड़बड़ी होने की संभावना है। मैंने मालवीय जी से कहा विधाता का लेख तो नहीं कटता तो फिर आपका लेख कैसे कटेगा ? मालवीय जी ने कहा क्या मैं विधाता हूँ ? मैंने कहा विश्वविद्यालय के तो आप विधाता ही हैं। पं० कालीप्रसाद जी ने कहा आपको यहाँ विधाता पुरुष कहते हैं। इस पर मालवीय जी हँसने लगे और बोले कि पंडितों का कहना मानना चाहिये। भेज दो।

उस वर्ष वह छात्र परीक्षा में बैठ गया और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महामना मालवीय जी विद्यार्थियों के प्रति बहुत उदार थे। विद्यार्थियों की सहायता करने में मालवीय जी नियमों की परवाह नहीं करते थे। इनके लिये उन्हें प्रायः अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करना पड़ता था। एक बार एक विद्यार्थी इण्टर की परीक्षा में तेरह अंक कम होने के कारण फेल हो गया। उसने इंगलैंड में डाक्टरी पढ़ने के लिये सारी व्यवस्था कर ली थी, किन्तु परीक्षा को असफलता उसके मार्ग का कंटक बन गयी। मालवीय जी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने तुरन्त रजिस्ट्रार को आज्ञा दी कि वह विद्यार्थी उत्तीर्ण कर दिया जाय। रजिस्ट्रार ने निवेदन किया कि उसे उत्तीर्ण करने के लिये छत्तीस और विद्यार्थियों को उत्तीर्ण करना होगा। उदारमना मालवीय जी बोले, 'तो डरते क्या हो ? करो सब को उत्तीर्ण। हमारे विश्वविद्यालय में एक भी छात्र अनुत्तीर्ण नहीं होना चाहिए।'

मालवीय जी 'एक भिक्षुक'

मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने हित के काज।
पर कारण हित माँगिबे, मोहि न आवत लाज॥

उपर्युक्त कथन पूज्यनीय मालवीय जी के लिये ठीक बैठता है । कहा गया है—'सौ में एक आदमी बहादुर होता है, हजार में एक आदमी वेद का पंडित, दस हजार में एक आदमी मंच पर धड़ल्ले से बोलने वाला होता है । परन्तु दान देने वाला मनुष्य होता है अथवा नहीं होता, इसमें सन्देह है ।

मालवीय जी ने शास्त्र के इस सन्देह का निराकरण कर दिया । उन्होंने दिखला दिया कि यदि भगवान् की कृपा हो तो ऐसा भी हो सकता है कि माँगने वाला केवल एक हो और देने वाले सैकड़ों ।

मालवीय जी को भिक्षा माँगने में जो सफलता मिलती थी उसके कई कारण थे । एक तो मालवीय जी महाराज की वेशभूषा और दूसरी उनकी मधुरवाणी । मालवीय जी की जीभ पर सरस्वती बसी हुई थी। उनकी मधुर वाणी पर कितनी स्त्रियों ने अपने आभूषण न्योछावर कर दिये, कितने लोगों ने अपनी दिन भर की कमाई लुटा दी । यहाँ पर एक घटना का उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा ।

एक दिन एक यात्री महोदय विश्वविद्यालय को देख कर उसके जनक महामना मालवीय जी के दर्शनार्थ उपस्थित हुए ।

'अशिक्षित जनता को शिक्षित बनाकर ही देश का कल्याण होगा, यही सोचकर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई है।'

कहते हुए उन्होंने पूछा—

कहिये, कहाँ से आये ?

हैदराबाद से।

विश्वविद्यालय देखा ?

जी हाँ।

पसंद आया ?

महाराज ! क्या कहना है ! स्वर्ग है स्वर्ग।

कुछ सहायता दीजियेगा ?

अवश्य, जो आज्ञा हो।

क्या काम करते हो ?

मिल में नौकर हूँ।

मासिक वेतन क्या है ?

एक हज़ार रुपया।

एक मास का पारिश्रमिक दे दीजियेगा ?

आगन्तुक ने पाँच सौ रुपया देकर प्रार्थना की—

शेष घर जाकर भेज दूँगा।

बहुत अच्छा ! भक्ति श्रद्धा से एक ही पैसा बहुत है विश्वविद्यालय का अभी तिहाई हिस्सा भी नहीं बना,

पाँच करोड़ रुपयों की आवश्यकता है। अब बुढ़ापे के के कारण कमजोर हो गया हूँ। आप लोगों तक पहुँच नहीं पाता। पड़े-पड़े हाथ फैलाया करता हूँ। और अन्त समय तक इसी तरह पड़े-पड़े भी महामना जी विश्व-विद्यालय के लिए चन्दा मांगते रहे। वास्तव में वे 'भिक्षुक-सम्राट' थे।

महात्मा गाँधी के शब्दों में वे भारत के एक 'महान् भिखारी' थे। महामना विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में जब प्रयाग पधारे तो एक अत्यंत रोचक घटना घटित हुई। प्रयाग के रईसों तथा धनीमानी सज्जनों से विश्वविद्यालय के लिए 'धन' एकत्र करने के उद्देश्य से उन्होंने उनकी एक सूची तैयार की और उनको एक सभा में आमंत्रित किया। इस सभा में नगर के प्रायः सभी धनीमानी व्यक्ति पधारे और उन्होंने इस पुण्य-कार्य में यथासंभव योग प्रदान किया। किन्तु नागरिकों की इस सूची में भूलवश एक रईस का नाम शामिल नहीं किया जा सका। महामना जब सभा से लौटे तो उन्हें उनकी याद आयी। आप तुरन्त उनकी कोठी पर गए। वे रईस महोदय कुपित होकर बोले—"कहिए, कैसे आए पंडित जी ?" "विश्वविद्यालय के कार्य से आया था" महामना का उत्तर था।

"मुझसे आपको क्या प्रयोजन ? आपने अपनी सूची के अनुसार नगर के रईसों को न्यौता दिया, किन्तु मुझे नहीं। हाँ भाई, मैं तो कोई बड़ा आदमी हूँ नहीं, कैसे आप मुझे बुलाते ?"

महामना उनके इस कथन पर अवाक् रह गए, किन्तु उनकी वाक्पटुता ने उनका तुरन्त साथ दिया। वे मंद मुस्कान छोड़ते हुए बोले—"आप भी क्या कहते हैं। मैं पहिले ही यह समझता था कि आप रुष्ट हो जायंगे। किन्तु वह सूची तो रईसों की थी, राजा-महाराजाओं की नहीं। आप तो मेरी दृष्टि में महाराज हैं।"

बस, इतना सुनते ही उक्त रईस पिघल गए और उन्होंने न केवल पचीस हजार नकद दिए, अपितु विश्व-विद्यालय में एक सुन्दर भवन बनवाने का भी आश्वासन दिया। ऐसा था महामना का व्यक्तित्व और उनकी संगत पूर्ण वाणी।

एक बार राजा बलदेवदास बिड़ला ने कहा कि वे गंगा जी में बैठकर कुछ दान करना चाहते हैं, परन्तु शर्त यह है कि गंगा जी में बैठकर कोई ब्राह्मण उसे ले। मालवीय जी को इसकी खबर लग गई। वे तुरन्त तैयार हो गये। बिड़ला जी ने जब सुना कि मालवीय जी गंगा जी में बैठकर दान लेंगें तो अवाक् रह गये। परन्तु

उनके मुँह से बात निकल चुकी थी। राजा और भिक्षुक दोनों ही गंगा में बैठे । दान लेने के लिये मालवीय जी उनके सामने आये। बिड़ला जी ने कुशा लेकर मालवीय जी के हाथ में चेक रख दी। चेक लाख के ऊपर अवश्य थी। मालवीय जी ने बिड़ला जी को आशीर्वाद दिया। और उनसे मिले हुये धन पर थोड़ा सा अपना धन मिलाकर उसी समय गंगा जी के भीतर विश्वविद्यालय के नाम संकल्प कर दिया। उपस्थित व्यक्तियों के मुख से निकल पड़ा साधु-साधु !

इसी प्रकार मालवीय जी ने कश्मीर के राजा से उनके राजी न होने पर भी किस प्रकार अपनी चतुरता से दान लिया। यह घटना भी बहुत रोचक है।

कश्मीर के तत्कालीन महाराजा को मालवीय जी ने पत्र लिखा कि वह काशी विश्वविद्यालय के लिए दस लाख रुपया दान दें। महाराजा स्वयं जम्मू कश्मीर में एक विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते थे। अतः उन्होने अपनी असमर्थता प्रगट करते हुए टाल दिया। मालवीय जी कब चुप बैठने वाले थे। वे किसी अवसर की ताक में लगे रहे । उन्हें मालूम हुआ कि महाराजा का यह नियम है कि रक्षाबन्धन के दिन सबेरे पहिले पहल जो भी ब्राह्मण सामने पड़ जाता है उसे वह मुँह

माँगा दान देते हैं । बस फिर क्या था ? रक्षा-बन्धन के अवसर पर मालवीय जी कश्मीर पहुँच गये और वहां लोगों से मिल-जुल कर ऐसी व्यवस्था करली कि सबेरे सबसे पहिले वे ही महाराजा के सामने पड़ें । सबेरे जैसे ही महाराजा की सवारी निकली मालवीय जी सामने आकर आशीर्वाद का मंगल श्लोक सुनाने लगे । मालवीय जी की भव्य मूर्ति किसी से छिपी नहीं थी । महाराजा ने उन्हें पहचान लिया और बोले कहिए, क्या चाहते हैं ? मालवीय जी मुसकराते हुए बोले,—"वही, दस लाख रुपये' । और महाराजा को यह दान देना पड़ा ।

राष्ट्रकवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त ने ठीक ही कहा है:—

'भारत' को अभिमान तुम्हारा,
तुम भारत के अभिमानी ।
पूज्य पुरोहित थे हम सबके,
रहे सदैव समाधानी ।
तुम्हें कुशल याचक कहते हैं,
किन्तु कौन तुम-सा दानी ?
अक्षय शिक्षा-सत्र तुम्हारा
हे ब्राह्मण - ब्रह्मज्ञानी ।

स्वयं मदन मोहन की तुममें,
तन्मयता है समा गई ।
कल्याणी वाणी जन-जन के,
हित में धूनी रमा गई ।।

सच्चे हिन्दी सेवी

मालवीय जी को अपनी मातृभाषा हिन्दी से अगाध स्नेह था। आपने हिन्दी की जो सेवा की वह राष्ट्रभाषा के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। महामना जी हिन्दी-भक्त होने के कारण बहुधा कहा करते थे 'अंगरेजी में लिख पढ़ तो लेता हूँ किन्तु इतना भरोसा नहीं कि मैंने अपने मन की बात ठीक लिखी है।' मालवीय जी के समय में देश में हिन्दी के प्रश्न को लेकर बड़ा विवाद चल रहा था। उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और १८९५ में उन्होंने हिन्दी और नागरी के आन्दोलन के नेतृत्व को सँभाला। इस क्षेत्र में मालवीय जी ने जो ऐतिहासिक कार्य किया वह उनके अमर कार्यों का एक महत्वपूर्ण अंग है। हिन्दी-नागरी आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य था कचहरियों और स्कूलों में उसे उचित स्थान दिलाना। प्रयत्न एवं सच्चे लगन से किसी भी कार्य को पूरा किया

जा सकता है। मालवीय जी तथा उनके प्रिय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन और अनेक हिन्दी भक्तों की साधना से आज उनका स्वप्न पूरा हो गया है और हिन्दी राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन है।

जिस समय हिन्दी आन्दोलन अपने पूर्ण जोर पर था, मालवीय जी ने हिन्दी के लेखकों, पत्रकारों और उसके प्रेमियों का एक वृहद् सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। इस सम्मेलन का नाम रखा गया 'हिन्दो साहित्य सम्मेलन।' इस सम्मेलन का आयोजन नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में हुआ। हिन्दी के इतिहास में यह कभी न भुलाने वाली एक ऐतिहासिक घटना थी। १० अक्टूबर सन् १९१० को काशी में सम्मेलन आरम्भ हुआ। मालवीय जी इस सम्मेलन के सभापति चुने गये। हिन्दी संसार ने उनका उस अवसर पर जो सम्मान किया, वह वर्णन से परे है। दूसरे वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन फिर प्रयाग में हुआ। इस अधिवेशन में मालवीय जी ने सम्मेलन की बागडोर पुरुषोत्तमदास जी टंडन को सौंप दी। टंडन जी ने बड़ी योग्यता एव कुशलता से इस भार को संभाला। आज भी मालवीय जी की हिन्दी सेवा का जीवित प्रतीक—'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' अपने निर्माता के असीम हिन्दी प्रेम को प्रकट

करता है ।

मालवीय जी जहाँ एक ओर हिन्दी-सेवी थे, वहीं वे स्वयं एक साहित्यकार भी थे । वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की गोष्ठी में सम्मिलित होते थे । उस समय मालवीय जी मकरन्द उपनाम से बड़ी ही सरस, एवं मनोरंजक कविताएँ किया करते थे ।

धर्मात्मा मालवीय जी

'पृथ्वी-मंडल पर जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है, वह धर्म है और वह धर्म सनातन धर्म है ।' (श्री मालवीय जी) ।

मदनमोहन मालवीय सनातन धर्म के कट्टर पोषक थे और धर्म-पालन के लिए वे सदाचार को आवश्यक मानते थे । उनके इस पद में उनकी भक्ति-भावना व्यक्त हुई है--

घट-घट व्यापक राम जप रे ।
मत कर बैर, झूठ मत भाखै ।।
मत परधन हर, मत मद चाखै ।
जीव मत मार, जुवा मत खेलै ।।
मत परतिय लख, यही तेरो तप रे ।
घट-घट व्यापक राम जप रे ।।

मालवीय जी की राधाकृष्ण में बड़ी आस्था थी और उनकी यह आस्था उन्हें अपने पूज्य पिता द्वारा प्राप्त थी। मालवीय जी के शहर वाले मकान में राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित थी। जब भी वे प्रयाग आते थे अपने उस मकान में जाकर सम्पूर्ण वस्त्र उतार कर, एक भींगा डुपट्टा पहन, बड़ी भक्ति से देवता के सामने नत-मस्तक होते थे। इसमें वे तनिक भी असावधानी नहीं करते थे, चाहे कितना ही आवश्यक कार्य क्यों न हो। श्रीमद्भगवद्-गीता पर भी इनकी असीम निष्ठा थी। उनका विश्वास था कि 'संसार में भगवद्गीता के समान भक्ति की शिक्षा देने वाली कोई दूसरी पुस्तक नहीं।' इसी लिए जितना ही इसका प्रचार हो उतना ही मनुष्य जाति का उपकार होगा। गीता के प्रचार व प्रसार के सम्बन्ध में वे सदैव चिन्तित रहा करते थे। इस प्रसंग में एक बात मेरे पितामह से सम्बन्ध रखती है। जिसका उल्लेख कर देना उचित होगा। मेरे पितामह पं० ब्रजनाथ व्यास महामना मालवीय जी के समय लॉ कालेज के प्रिन्सिपल थे। मालवीय जी को उनसे बहुत स्नेह था। सोलह वर्षों तक प्रिन्सिपल रह चुकने के पश्चात्, मेरे पितामह जिस समय काशी विश्वविद्यालय छोड़कर विदा होने लगे तो उन्होंने मालवीय जी से पूछा कि अब 'मैं क्या करूँ।' मालवीय जी महाराज

ने तुरन्त उत्तर दिया था 'गीता का प्रचार करो, मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा यह कार्य सफल हो।' उन्होंने मालवीय जी की आज्ञा का पालन किया और सम्पूर्ण श्रीमद्भगवत गीता का सरल, मधुर हिन्दी पद्यों में अनुवाद कर डाला। यह गीता 'व्यास-गीता' के नाम से प्रसिद्ध हुई। गीता के प्रकाशित होने पर मालवीय जी ने संदेश भेजा था—'मैं हृदय से चाहता हूँ कि पं० ब्रजनाथ व्यास की गीता के सिद्धान्तों के प्रचार का यत्न सफल हो। उनका गीता के अनुवाद का यत्न और परिश्रम सराहनीय है।'

मालवीय जी अपने धर्म के बड़े पक्के थे। वे १९३१ की गोलमेज काँफ्रेन्स में सम्मिलित होने के लिये गाँधी जी के साथ विलायत गये। वहाँ उनके कई धार्मिक भाषण भी हुये। यद्यपि मालवीय जी को समुद्रयात्रा करनी पड़ी किन्तु फिर भी उन्होंने अपने धर्म को प्रत्येक प्रकार से सुरक्षित रखा।

विलायत यात्रा का विवरण घनश्यामदास बिड़ला ने इस प्रकार किया है :—

"पंडित जी के लिए चूल्हा अलग बन गया है। गंगा-जल भी साथ है! मिट्टी का कनस्तर, स्वदेशी साबुन,

संस्करण	१९८५
●	
मूल्य	रु० २०.००
●	
मुद्रक	धारा प्रेस इलाहाबाद
●	

प्रकाशक	अनादि प्रकाशन ६०७ कटरा इलाहाबाद